International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 05-08

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 05-08
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: xx-05-2017
Accepted: xx-06-2017

खुशबु कुमारी जैन
शोधच्छात्रा– पी. एच. डी. बाँसवाडा, राजस्थान, भारत।

Correspondence
खुशबु कुमारी जैन
शोधछात्रा– पी. एच.डी. बाँसवाडा, राजस्थान, भारत।

जैन दर्शन सम्मत त्रिरत्नों का सिद्धान्तसारसङ्ग्रह में प्रतिपादन

खुशबु कुमारी जैन

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक श्रमण परम्परा में 'जैन दर्शन' का महत्वपूर्ण स्थान है। नरेन्द्रसेनाचार्य (12वीं शताब्दी) जैन परम्परा के एक महान् आचार्य है। अद्यावधि यावत् इनकी दो कृतियाँ उपलब्ध होती है-

1. प्रतिष्ठा दीपक
2. सिद्धान्तसारसङ्ग्रह

'प्रतिष्ठा दीपक' जहाँ ज्योतिष परक ग्रन्थ है वहीं 'सिद्धान्तसारसङ्ग्रह' में जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का सार रूप में प्रतिपादन किया गया है। प्रकृत शोधपत्र में 'सिद्धान्तसारसङ्ग्रह' में प्रतिपादित 'त्रिरत्न की अवधारणा' का शोधपरक दृष्टि से विवेचन किया जा रहा है।

जैन दर्शन मोक्ष की प्राप्ति के लिए त्रिविध साधनामार्ग प्रस्तुत करता है। उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र के (द्वितीय शताब्दी) प्रारम्भ में ही कहा है- ''सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष मार्ग है।''[1] इसके अलग उत्तराध्ययन सूत्र' में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र एवं सम्यक् तप इस प्रकार से मुक्ति के लिए चतुर्विध मार्गों का उल्लेख भी प्राप्त होता है[2] तथापि जैनाचार्यो ने बहुलता से त्रिविध मार्गों को स्वीकार किया है एवं 'तप' का अन्तर्भाव चारित्र में कर दिया जाता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जब 'सम्यक्' पद से अन्वय हो तब तीनों सम्मिलित रूप में त्रिरत्न कहलाते हैं। सम्यक् पद का निर्वचन परक अर्थ है- ''जो समस्त द्रव्य भावों को व्याप्त करता है।[3]

चूँकि 'सिद्धान्तसारसङ्ग्रह' तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा में लिखा गया ग्रन्थ है अतः इसके आरम्भिक तीन अध्याय भी त्रिरत्नों के प्रतिपादन में समर्पित है।

सम्यग्दर्शन

ग्रन्थकर्ता ने सम्यग्दर्शन को परिभाषित किया है कि- ''देव-आगम-गुरु में सम्यक् श्रद्धान ही सम्यक् दर्शन है।''[4] यह श्रद्धान लोकमूढतादि दोषों से रहित होना चाहिए। ग्रन्थ में पुनश्च देवता, आगम और गुरु को भी परिभाषित किया गया है। क्षुधा, प्यास, वृद्धावस्था, रोग आदि अष्टादश दोषों से सर्वथा रहित है जो मुक्त हो गये है, तथा केवलज्ञान प्रकाश के धारक हैं; ऐसे जिनेश्वर परमार्थ (सच्चे) 'देव' हैं।[5] अनेक सुन्दर रचनाओं से रम्य तथा सज्जनों को आनन्द प्रदान करें ऐसे जिनेन्द्र वचन 'आगम' है।[6] दस प्रकार के बाह्य परिग्रह एवं चौदह प्रकार के आन्तरिक परिग्रहों से मुक्त, अर्थात् निग्रन्थ हैं किन्तु जो ग्रन्थों (शास्त्रों) से युक्त भी हो; कर्मो के नाश होने से लघु हो गए हों किन्तु सम्यग्ज्ञानादि गुणों से पुनः भारी हो गए हों उन्हें 'गुरु' कहते हैं।[7]

नरेन्द्रसेनाचार्य ने देव-शास्त्र-गुरु में श्रद्धान को 'सम्यग्दर्शन' कहा है तो उनके पूर्ववर्ती उमास्वामी ने- ''तत्त्वार्थ-श्रद्धान को सम्यक् दर्शन माना है।''[8] अर्थात् जिनोक्त सप्त तत्त्वों के यथार्थ रूप में श्रद्धा रखना सम्यग्दर्शन है।

'समयसार' में कुन्दकुन्दाचार्य (प्रथमशती) ने प्रतिपादित किया है कि जो विवेकी जीव भूतार्थ- यथार्थ वस्तुस्वरूप के प्ररूपक निश्चय नय का आश्रय लेता है वह सम्यग्दृष्टि होता है।[9] 'प्रशमरतिप्रकरण' के अनुसार जीवादि पदार्थों के विषय में जो यही तत्त्व है ऐसा निर्धारण होता है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।[10] 'पउमचरियं' में भी एक स्थान पर उल्लेख प्राप्त होता है कि जो लौकिक श्रुतियों में मुग्ध न होकर जीवादिक नौ पदार्थों का श्रद्धान करता है उसे सम्यग्दृष्टि कहा गया है।[11] 'योगाशास्त्र' के अनुसार भी जिनवर प्रभु द्वार कहे गए तत्त्वों में रुचि रखना सम्यक् श्रद्धान (दर्शन) है।[12]

इस प्रकार तत्त्वार्थ में श्रद्धान को प्रायः जैन दर्शन में 'सम्यग्दर्शन' कहा गया है। नरेन्द्रसेनाचार्य ने 'देव, शास्त्र एवं गुरु में श्रद्धा रखना' इस प्रकार सम्यग्दर्शन को परिभाषित किया है क्योंकि देव, शास्त्र एवं गुरु ये तीनों भी सप्त तत्त्वों अथवा नव पदार्थों का ही उपदेश देते हैं।

'सिद्धान्तसार-सङ्ग्रह' में सग्यग्दर्शन के 25 ऐसे दोषों को प्रतिपादित किया है जो सम्यग्दर्शन को मलिन करते हैं। ये दोष है- छः अनायतन (मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र ये तीन तथा इन तीनों के धारक पुरुष) 3 मूढ़ताएँ (कुदेव, गुरुमुढता, समयगूढ़ता) 8 दोष (शंका, कांक्षा विचिकित्सा आदि) तथा आठ गर्व (ज्ञान, पितृवंश, शक्ति, मातृ वंश, धनधान्यादिक सम्पत्ति, लोगों से प्राप्त सम्मान तप तथा शरीर की सुन्दरता आदि)।[13]

जिस प्रकार सम्यग्दर्शन को मलिन करने वाले दोषों की परिगणना नरेन्द्रसेनाचार्य ने की है तद्वत् ही सम्यकग्दर्शन के अष्ट गुणों का उल्लेख भी उनके द्वारा किया गया है। ये गुण है- संवेग, निर्वेग, निन्दा, गर्हा, प्रथम, भक्ति, वात्सल्य, अनुक्रम्पा।

'सिद्धान्तसारसङ्ग्रह' में सम्यग्दर्शन के दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से दो तथा तीन भेद किए गए हैं।[14] पहले दृष्टिकोण के अनुसार यह- निसर्ग सम्यगदर्शन एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन है; भावों की दृष्टि से किए गए एक-दूसरे प्रकार के भेद में सम्यग्दर्शन तीन प्रकार का होता है-

1. औपशमिक सम्यग्दर्शन
2. क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन
3. क्षायिक सम्यग्दर्शन।

इस प्रकार यद्यपि यह ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा में लिखा गया ग्रन्थ है फिर भी नरेन्द्र सेनाचार्य ने अपनी मेधा से तत्त्वार्थसूत्र के सम्यग्दर्शन की अवधारणा एवं सिद्धान्तों को तो पुष्ट किया ही है साथ ही कुछ नई मान्यताओं को उपस्थापित किया है जैसे सम्यग्दर्शन के निसर्ग एवं अधिगमज दो भेद तो उन्होंने तत्वार्थ सूत्र के अनुसार ही माने किन्तु औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक आदि ऐसे प्रकार या भेद हैं जो 'तत्त्वार्थसूत्र' में निहित नहीं है।

सम्यग्ज्ञान

सम्यग्ज्ञान को स्पष्ट करते हुए नरेन्द्र सेनाचार्य ने कहा है कि जो स्वयं को तथा पर पदार्थ को प्रकाशित करता है, जो आत्मा का स्वभाव है तथा केवलज्ञानी भव्यात्माएँ जिसकी भावना करती है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।[15] सम्यग्ज्ञान को ही अर्थ की अन्वयता होने से बोध, बुद्धि, ज्ञान, प्रमाण, प्रमिति, प्रमा, प्रकाश आदि नाम से पुकारते हैं।[16]

कुन्दकुन्दाचार्य (प्रथम शती) ने 'समयसार' में सम्यग्ज्ञान को परिभाषित किया है कि जीवजीव पदार्थों के अधिगम का नाम सम्यग्ज्ञान है।[17] वही 'नियमसार' में उन्होंने प्रतिपादित किया है कि जिस-जिस प्रकार से जीवादि पदार्थ व्यवस्थित है उनका उसी रूप से जो ग्रहण होता है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।[18] 'तत्त्वार्थ भाष्यसिद्धसेन वृति' के अनुसार लक्ष-लक्षण व्यवहार के दोष से रहित जो ज्ञानावरण कर्म के क्षय और क्षयोपशम से मति-श्रुतादि भेदरूप ज्ञान होता है वह सम्यग्ज्ञान है।[19]

नरेन्द्रसेनाचार्य के मत में सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण है। नैयायिक सन्निकर्ष को प्रमाण मानते हैं उसका नरेन्द्रसेन ने खण्डन किया है कि सन्निकर्षवादियों को सूक्ष्मपदार्थ, अन्तरितपदार्थ, दूरगत पदार्थ अप्रमेय होंगे क्योंकि उनके साथ इन्द्रियों के सम्बन्ध का अभाव है।[20] सन्निकर्ष यदि ज्ञान है तो व्यवहित पदार्थ ज्ञान नहीं होना चाहिए। उसी प्रकार सूक्ष्म-परमाणु, मुट्ठी में रखा हुआ पदार्थ, कालान्तरित राम-रावण आदि सन्निकर्ष वादियों को अप्रमेय हो जाएँगे।

नैयायिक, योग-सांख्यों आदि ने सर्वज्ञ की अवधारणा को स्वीकार किया है किन्तु सन्निकर्ष को प्रमाण मानने से सम्पूर्ण पदार्थों के साथ आत्मा, इन्द्रिय और मन का सम्बन्ध होना शक्य नहीं है अतः सर्वज्ञाभाव होगा जो कि उन्हें प्रिय नहीं है।[21] अतः सन्निकर्ष में प्रमाणता नहीं है; ज्ञान ही प्रमाण है।

इस सम्यग्ज्ञान के 5 भेद माने गए हैं-

1. मतिज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3. अवधिज्ञान, 4. मनः पर्ययज्ञान, 5. केवलज्ञान

नरेन्द्रसेनाचार्य का कथन है कि ये पाँचो ज्ञान स्वविषय को तो जानते ही हैं भावी सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति भी इनसे होती है।[22] मतिज्ञान के अवग्रह, इहा, अवाय, तथा धारणा ये 4 मुख्य भेद हैं तथा भेद प्रभेद करने पर इसके तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं।[23]

श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। इसके दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि अनेक भेद है और आचाराङ्ग आदि बारह भेद है। यह श्रुतज्ञान श्रुतावरण कर्म के क्षयोपशम से होता है। यह श्रुतज्ञान अङ्ग व अङ्गबाह्य नाम से दो प्रकार का है। पुनः अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत ऐसे भी दो प्रकार है।[24]

जिस ज्ञान के द्वारा नीचे की रूपी द्रव्य अधिक व्यवस्थापित किया जाता है जिसके अनेक भेद है उसे अवधिज्ञान कहना चाहिए। ये अवधिज्ञान तीन प्रकार का होता है। देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। ये देशादि अर्थों को प्रगट करने वाले हैं। देशावधि चारों योनियों के संज्ञीपर्याप्तक प्राणियों को उत्पन्न होता है। परमावधि और सर्वावधि ये दो पवित्र अवधिज्ञान चरम शरीरधारक महर्षियों को होते हैं।

जिस ज्ञान के द्वारा अन्य व्यक्ति के मन में स्थित पदार्थ को जाना जाता है वह मनः पर्ययं ज्ञान है। इस ज्ञान के ऋजुमति तथा विपुलमति ऐसे दो भेद है।[25]

अवधिज्ञान का क्षेत्र विस्तृत है; विषय की दृष्टि से अवधिज्ञान के विषय से मनः पर्यय ज्ञान का विषय अत्यन्त सूक्ष्म है। इस प्रकार क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा से इन दोनों ज्ञानों में अन्तर है।[26]

सम्पूर्ण ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से लोक को तथा अलोक को प्रकाशित करने वाला उत्तम केवल ज्ञान उत्पन्न होता है। वह अकेला ही रहता है। उसके साथ में अन्य सब ज्ञान नहीं रहते हैं।[27]

प्रत्यक्ष एवं परोक्षज्ञान की दृष्टि से मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान है और अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान तथा केवलज्ञान ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष है।[28] मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मन की ओर इन्द्रिय की अपेक्षा लेकर

पदार्थ को जानते हैं। अतः वे दोनों ज्ञान सापेक्ष होने से परोक्ष है। अवधि आदिक तीन ज्ञान इन्द्रिय, मन, पदार्थ आदि की अनपेक्षा से ही पदार्थों का प्रत्यक्षतया ज्ञान करने में समर्थ है अतः ये तीनों ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान की श्रेणी में आते हैं।

अतः विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि 'तत्त्वार्थसूत्र' की परम्परा में यह ग्रन्थ लिखा गया है तथा लगभग वही प्रतिपाद्य है जो 'तत्त्वार्थसूत्र' का है तथापि कई मायनों में अलग भी है। सम्यग्ज्ञान की विवेचना के क्रम में तत्त्वार्थसूत्र में जहाँ सम्यग्ज्ञान की परिभाषा ही नहीं दी गई है वहीं यहाँ उसकी परिभाषा दी गई है। किन्तु भेद-प्रभेद 'तत्त्वार्थसूत्र' के समान ही माने हैं। उमा स्वामी ने सम्यग्ज्ञान और प्रमाण को एक ही माना है। नरेन्द्रसेनाचार्य (12वीं शताब्दी) ने भी ज्ञान को ही प्रमाण माना है जबकि उमास्वामी (द्वितीयशती) के पश्चावर्ती एवं नरेन्द्रसेनाचार्य के पूर्ववर्ती सिद्धसेन दिवाकर (4-5वीं शताब्दी) आदि ने सम्यग्ज्ञान एवं प्रमाण को अलग-अलग माना है।

सम्यक् चारित्र

नरेन्द्रसेनाचार्य ने सम्यक् चारित्र को स्पष्ट किया है- ''जो आचरण में लाया जाता है, अर्थात् जो सदाचार पालन किया जाता है वह कर्म रूपी कक्ष के लिए अनल के समान 'सम्यक् चारित्र' है।[29] कुन्दकुन्दाचार्य ने 'समयसार' में उल्लेख किया है कि मोक्षमार्ग पर आरुढ महापुरुषों का विषयों में जो समभाव- (रागद्वेष का अभाव) होता है, उसका नाम चारित्र है।[30] इससे अलग 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में निषेधात्मक रूप में परिभाषा दी गई है- ''हिंसा, असत्यभाषण, चोरी, मैथुन, तथा परिग्रह इन पाप क्रियाओं से संज्ञी की विरति ही 'सम्यक् चारित्र' है।[31] 'तत्त्वार्थभाष्यसिद्धसेनवृत्ति' में प्रतिपादित है कि- ''चारित्रावरण कर्म के क्षय तथा क्षयोपशम से ज्ञानपूर्वक समीचीन क्रियाओं में प्रवृत्ति तथा असमीचीन क्रियाओं में निवृत्ति होती है उसे सम्यक् चारित्र कहा जाता है। इसके सामायिकादि पाँच मुख्य भेद है तथा मूलोत्रगुण आदि प्रशाखाएँ हैं।''[32]

नरेन्द्रसेनाचार्य ने भी चारित्र के 5 प्रकार बताएँ हैं- सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय तथा यथाख्यातचारित्र। तत्त्वार्थसूत्र में चारित्र पालन करने के लिए व्रतों का निर्देश प्राप्त नहीं होता है किन्तु नरेन्द्र सेनाचार्य ने 5 व्रतों का निर्देश किया है। हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, मैथुन सेवन और परिग्रहाभिलाष इनसे विरक्त होना व्रत है।[33] इस प्रकार नरेन्द्रसेन ने श्रावकाचार की तरह निषेधात्मक परिभाषा नहीं दी है। इन्होंने विधेयात्मक परिभाषा देकर तत्वार्थसूत्रकार से कुछ आगे बढ़कर सम्यक् चारित्र की प्राप्ति के उपायों (व्रतों) का भी निर्देश किया है।

इस प्रकार नरेन्द्र सेनाचार्य ने कहीं तो 'तत्त्वार्थसूत्र' की परम्परा को आगे बढ़ाया है तो कुछ स्थानों पर बाद में विकसित सिद्धान्तों को नकारते हुए तत्त्वार्थसूत्र के सिद्धान्तों का ही समर्थन किया है। कहीं-कहीं अधिक विस्तार भी दिया है जैसे उमास्वामी ने सम्यग्ज्ञान तथा चारित्र की परिभाषा नहीं दी है। सम्यग्दर्शन को मलिन करने वाले दोष, सम्यग्दर्शन के अष्टगुण आदि का वर्णन भी तत्त्वार्थसूत्र में प्राप्त नहीं होता है।

संदर्भ ग्रर्थ

1. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। तत्त्वार्थसूत्र, 1/1
2. उत्तराध्ययन सूत्र, 28/2
3. सम्यक्- समञ्चति गच्छति व्याप्नोति सर्वान् द्रव्यभावानिति सम्यक्। तत्त्वार्थ भाष्य सिद्धसेन वृत्ति 1-1, पृष्ठ 30
4. श्रद्धानं शुद्धवृत्तीना देवतागमलिङ्गिनाम्। मौढ्यादिदोषनिर्मुक्तं दृष्टि दृष्टिविदो विदुः सिद्धान्तसारसङ्ग्रह, नरेन्द्रसेनाचार्य। 1/34
5. वही, 1/35
6. वही, 1/36
7. वही, 1/37
8. तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। 'तत्वार्थसूत्रम्', उमास्वामी, 1/2
9. 'मूदत्थ मस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।। समयसार, कुन्दकुनाचार्य, गाथा-13
10. एतेष्वध्यवसायो योऽर्थेषु विनिश्चयेन तत्त्वमिति। सम्यग्दर्शनमेतत्। (प्रशमर 222)
11. जो कुणइ सद्यहाणं, जीवाईयाण नवपयत्थाणं। लोइयसुईसु, रहिओ, सम्मद्दिट्ठी सो भणिओ।। (पउमच. 102-181)
12. रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते। (योगशा. 9-994) योगशास्त्र, हेमचन्द्राचार्य
13. पडानायतन मूढ़त्रयं शङ्कादिकाष्टकम्। मदाष्टकममी दुष्टाः सदृर्शनोज्झिताः।। सिद्धान्तसार सङ्ग्रह, नरेन्द्रसेनाचार्य। 1/38
14. निसर्गाधिगमाभ्यां च तद्द्वेधा कथितं जिनैः (उपशमादिभेदेन पुनस्त्रेधोपलथ्यते) वही, 1/138
15. सम्यग्ज्ञानं परमज्योतिः स्वपरार्थावभासकम्। आत्मस्वभावमाभाव्यं भावयन्ति भवातियाः सिद्धान्तसारसङ्ग्रह, नरेन्द्रसेनाचार्य। 2/1
16. वही, 2/2
17. लेसिमिधिगमो णाणं। समयसार, कुन्दकुन्दाचार्य, गाथा 165
18. संसयमोह विष्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं।। नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य, गाथा 139
19. सम्यग्ज्ञानं तु लक्ष्य लक्षणव्यवहाराव्यभिचारात्मकं ज्ञानावरणकर्मक्षयक्षयोपशमसमुत्थं मत्यादिभेदम्। तत्त्वार्थ भाष्य सिद्धसेन वृत्ति 1.1
20. सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः सन्निकर्ष वादिनाम्। अप्रमेया भवन्त्येव तत्सम्वन्धाद्यभावतः।। वही. 2/4
21. वही, 2/5, 2/6, 2/7
22. मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानमुत्तमम्। मनः पर्ययविज्ञानं कैवल्यमिति पंचधा। भावान्तरगता भावि सम्यग्ज्ञानगता ह्यमी। सिद्धान्तसार संग्रह 2/9, 2/10
23. मतिज्ञानं भवेत्पूतमिन्द्रियोद्यवम्। षट्त्रिंशतभेदं भव्यसत्वसुखावहम्। अवग्रहेहावायां धारणाश्च भेदतः। मतिज्ञानमिदं दिव्यं चतुर्विधमुदीरितम्।। वही, 2/11, 2/12
24. तत्पूर्वं च श्रुतज्ञानमनेकद्वादशप्रमम्। श्रुतावरणवीर्यस्य क्षयोपशमतो भवेत्। अङ्गाङ्गबाह्यभेदेन द्विविधं तदुदीरितं। अक्षरानक्षरत्वेन पुनर्द्वेधोपलभ्यते।। वही, 2/45, 2/46
25. परमानसगार्थस्य पर्ययणादिदं महत्। मनः पर्ययविज्ञानं ज्ञायते ज्ञानकोविदैः। सिद्धान्त सार सङ्ग्रह, नरेन्द्रसेनाचाय, 180
26. विशुद्धि क्षेत्र सत्स्वामिविषयेभ्यो विशेषतः। अवधेर्विशिष्टैश्च मनः पर्यय इष्यतो, 195

27. लोकालोकप्रकाशात्मा केवलज्ञानमुत्तमम्। केवलं जायतेयस्मादशेषावरणक्षयात्, 196
28. आद्ये परोक्षमित्येव प्रत्यक्षमपरं त्रयम्। सापेक्षेणानपेक्षेण भावेनैतन्निगद्यते।। सिद्धान्तसारसङ्ग्रह, नरेन्द्रसेनाचार्य। 202
29. चर्यते चरणं वापि कर्मकक्षक्षयानलम्। पञ्चधापञ्चज्ञाननायकैरुपलक्ष्यते। सिद्धान्तसार सङ्ग्रह, नरेन्द्रसेनाचार्य। 3/2
30. चारित्रं समभावो विसयेसु विरुढमग्गाणां।। 107 पञ्चास्तिकाय, कुन्दकुन्दाचार्य। (सम्पा.) ए. चक्रवर्ती, भारतीय ज्ञानपीठ, 1975
31. हिंसानृत- चौरेभ्यो मैथुन सेवा परिग्रहाभ्यां च। पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्। 3/3 रत्नकरण्ड श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र स्वामी, सफदरजंग, नई दिल्ली, 1988
32. सम्यक् चारित्रं तु ज्ञानपूर्वकं चारित्रावृत्ति कर्मक्षय- क्षयोपशमसमुत्थं सामयिकादि भेदं सदसत् क्रियाप्रवृत्ति- निवृत्ति लक्षणं मूलोत्रगुण शाखा प्रशाखम्। 9-9, तत्त्वार्थ भाष्य सिद्धसेन वृत्ति।
33. याच हिंसानृत स्तेयाब्राह्मणस्तु परिग्रहात्। विरतिस्तद्व्रतं ज्ञेयं कर्तव्यैकनिरुपकम्। 13/5, सिद्धान्तसारसङ्ग्रह- नरेन्द्रसेनाचार्य